[डा० सुशीला नायर]

कारण मैं समझती हूं कि मुसलमानों ने आसाम में जाकर वहां की भाषा आदि सीख कर अपने को वहीं का बना लिया जबकि बंगालियों ने अपना अस्तित्व अलग रखा। अपनी कालीपूजा अलग रखी। अपने मंदिर अलग रखे और आसामवासियों को हेय समझा। उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था। उन्हें समझना चाहिए था कि वह आसाम के अंग हैं तथा उनका बंगाल से उतना ही सम्बन्ध है जितना अन्य आसामवासियों का है।

जांच के सम्बन्ध में मैं प्रधान मंत्री के इस कथन से सहमत हूं कि हमें बाद में सामाजिक तथा आर्थिक कारणों की जांच करानी हैं। सम्भव है कि भाषावार राज्य बनाने की नीति ही उन्हें इस जांच के परिणामस्वरूप बदलनी पड़ जाये। आज तो शीघ्र आवश्यकता इस बात की है कि शरणार्थियों के दिलों में से डर की भावना निकाल दें और उन्हें पुनः बसाने का प्रयत्न करें। वहां पर कुछ समाजसेवक रहें जो शरणार्थियों को बसायें और इसका ध्यान रखें कि दुबारा वहां पर दंगे न हो पायें।

†**प्रधान मंत्री तथा वैदेशिक-कार्य मन्त्री (श्री जवाहरलाल नेहरू)** : हमने यहां जिस विषय पर लगातार तीन दिन तक बहस की, उसे लेकर एक हद तक सारे देश में, और खास कर आसाम तथा बंगाल में लोग बड़े उत्तेजित रहे हैं। इसलिये उसकी थोड़ी-बहुत झलक अगर जब-तब इस सभा की बहस में भी दिखी है, तो हमें उस पर ताज्जुब नहीं करना चाहिये। लोगों के दिल और दिमागों में अन्दर जो जज्बात दबे-छिपे पड़े हैं, उनकी झलक हमें यहां कभी-कभी दिखी है। फिर भी मैं कहूंगा कि यहां हमने इस मुश्किल और पेचीदगी भरी समस्या पर अपने आप पर काफी काबू रखते हुए बहस की हैं।

सचमुच, जब हम इस समस्या के ऊपरी, या कहिये कि बाहरी पहलूओं से दिमाग़ हटा कर, इसकी जड़ में, इसकी गहराई में कुछ और नीचे उतरते हैं, तो पता चलता हैं कि यह कितनी बड़ी समस्या है, इसका कितना फैलाव है और इस में कितनी पेचीदगियां हैं, इतनी कि डर सा लगने लगता है। आसाम और बंगाल के लिये तो इसकी अहमियत बहुत बड़ी है ही, लेकिन जैसा कि माननीय सदस्यों ने यहां बार-बार कहा है, यह समस्या कहीं ज्यादा बड़ी और गहरी है, जिसका असर देश के हर आदमी पर कई तरह से पड़ता है।

शायद कुछ लोग ऐसे भी हों जो सोचते हों कि वे खुद इन आसामियों से और बंगालियों से ज्यादा अच्छे हैं, ठंडे और सधे हुए दिमाग़ के आदमी हैं और इसलिय हम इन घटनाओं को सही नज़रिये से देख सकते हैं। जो, हम सधे हुए दिमाग़ के आदमी इसीलियें बने हुए हैं कि चोट हमारे सिर पर नहीं पड़ी। जब नौबत अपने सिर पर न हो, तो दिमाग का संतुलन बनाये रखना बड़ा आसान होता है। मैं अभी यहां बैठा-बैठा माननीय सदस्यों की स्पीचें सुनने की कोशिश कर रहा था, लेकिन मेरा दिमाग़ कुछ दूसरी तरफ भटक गया था। मुझे ऐसा लगने लगा था जैसे मैं किसी भूताखाने में पहुंच गया हूं। पार्लमिण्ट की यह इमारत ही नहीं, अपना पूरा देश, यहां से वहां तक फैला हुआ अपना देश, मुझे एक भूताखाना लगने लगा जिसमें हम सभी फंसे हुए हैं। एक ऐसी जगह जिस में तरह-तरह के भूत-प्रेत मंडरा रहे हैं। बहुत पहले के, गुजिश्ता जमाने के भूत, अभी कुछ ही पहले के जमाने के भूत, हमारे जज्बात और हमारी अपनी दिमाग़ी उलझनों तथा टकराहटों के भूत जहां मंडरा रहे हैं। मुझे ऐसा इसलिये लगा कि आज हम जो बहस यहां कर रहे हैं वह आसाम-बंगाल के बारे में नहीं, असल में हमारे अपने बारे में है। हम अपने ही बर्ताव, अपने ही जज्बात और अपनी ही उन चीज़ों के बारे में

†मूल अंग्रेजी में

यह बहस कर रहे हैं जिन से एक-दूसरे की उकसावा होता है, गुस्सा ग्राता है। ग्रसल में हम ग्राज ग्रपने दिलों दिमाग़ पर चढ़े हुए 'नेशनलिज्म' के राष्ट्रवाद के उस ऊपरी मुलम्मे के बारे में ही बहस कर रहे हैं, जो हल्की सी ठेस पहुंचते ही हमारे दिलोदिमाग़ से हट जाता है ग्रौर हमारी ग्रसली शक्ल उघार देता है। हम जो भी हों, पंजाबी हों या बंगाली, ग्रासामी हों या मद्रासी, चाहे जो भी हों, जहां कोई हल्की सी ठेस पहुंची, हमारा यह ऊपरी मुलम्मा हट जाता है, हम ग्रपने राष्ट्रवाद को एकदम भूल जाते हैं; ग्रसली चेहरा सामने ग्रा जाता है। हम दूसरों को फिरकापरस्ती की, साम्प्रदायिकता की बहुत बुराई करते रहते हैं, लेकिन जब हमारे खुद के फिरकापरस्त जज्बात उभर पड़ते हैं, तो उसमें हमारी ग्रौर सारी चीज़ें बह जाती हैं। फिर हमें ग्रौर बातें बिलकुल भूल जाती हैं। इसलिये हमें महसूस कर लेना चाहिये कि कसूरवार ग्रासामी या बंगाली नहीं, हम खुद हैं, हम में से हर एक इसका कसूरवार है।

हम राष्ट्रवाद की बड़ी दुहाई देते हैं, लेकिन हर ग्रादमी का राष्ट्रवाद उसके ग्रपने ढंग का, ग्रपने ही रंग का होता है। कहा यही जाता हैं कि 'पूरे भारत का राष्ट्रवाद' है, लेकिन पंजाबी लोग पंजाबी राष्ट्रवाद को मानते हैं ग्रौर मद्रासी लोग मद्रासी राष्ट्रवाद को। सबका, ग्रासमियों, बंगालियों, गुजरातियों——सभी का ग्रपने-ग्रपने ढंग का राष्ट्रवाद होता हैं। ग्रौर जब इन दो राष्ट्रवादों में कोई टक्कर होती है, तो गड़बड़ पैदा होती हैं।

भारत की एकता की जब हम बात करते हैं, तो हर ग्रादमी ग्रपने ढंग की एकता चाहता है। ग्रलग-ग्रलग राज्य के लोगों का ग्रपना ग्रलग-ग्रलग नजरिया होता है देश की एकता का। ग्रौर हर ग्रादमी एकता ग्रौर राष्ट्रवाद की ग्रपनी धारणा को, ग्रपने नजरिये को ही सही ग्रौर ग्रसल राष्ट्रवाद मानता हैं, दूसरे के नजरिय को ग़लत। हम सब का यही हाल है।

हम जांच करने ग्रौर कारणों का पता लगाने की बात करते हैं। ग्रगर हम इसकी जांच करें ग्रौर जरा गहरे उतरें तो शायद बहुत सी ऐसी बातों का पता चलेगा जो हम भूल से गये हैं। इसलिये कि हमारे पूरे देश में एक ही समाज नहीं हैं ग्रपने-ग्राप में सिमटा हुग्रा। जैसा कि डा० कृष्ण स्वामी ने कहा है हमारे भारतीय समाज में कई छोटे-छोटे समाज हैं, जो ग्रपने-ग्राप में सिमटे हुए हैं, जात-पांत वग़ैरह की वजह से। बंगाली, मद्रासी, गुजराती, इत्यादि——सभी के ग्रपने ग्रलग-ग्रलग समाज हैं ग्रपने-ग्राप में सिमटे हुए। विदेशों में जाकर देखिये वहां भारतीयों का एक क्लब, एक संस्था नहीं मिलेगी। वहां भी ग्रापको भारतीयों का बंगाली क्लब, गुजराती क्लब इत्यादि मिलेंगे। रंगून में एक गोरखपुरी क्लब ने मुझे १०,००० रुपये की थैली भेंट की थी। इसलिये कि जिन्दगी का यह ढब हमारे खून में भिदा हुग्रा हैं। हम राष्ट्रवाद की बातें तो करते हैं, पर हमारे दिमाग़ में राष्ट्रवाद की एक ग्रपनी ही धारणा रहती है, हमारा राष्ट्रवाद उन छोटे-छोटे समाजों के रंग में रंगा हुग्रा होता है।

हम बड़े फ़ख्र से कहते हैं कि भारतीय संस्कृति, हमारी सभ्यता में सब से बड़ी बात उसकी सहनशीलता, बर्दाश्त करते का मादा है। इस में शक़ नहीं। यूरोप की तारीख देखिये। यूरोप के मुकाबले हमारे लोगों में, हमारी संस्कृति में बर्दाश्त का मादा कहीं ज्यादा है। हम तरह-तरह के, ग्रपने से भिन्न लोगों को, दूसरों के धर्म ग्रौर विश्वास को सहन करते रहे हैं हमेशा से। लेकिन हम ग्रपनी समाजी ग्रादतों पर कोई चोट जरा भी बर्दाश्त नहीं कर पाते। ग्रगर कोई ग्रादमी ईश्वर पर विश्वास न करे, तो हमें उसकी ज्यादा फिक्र नहीं रहती, जब कि दूसरे मुल्कों में इस पर बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाती है। लेकिन हमारे समाज में समाजी तौर-तरीकों ग्रौर कायदों को सब से ज्यादा ग्रहमियत दी जाती है। उनको ग्रगर न माना जाये, तो बर्दाश्त नहीं किया जाता। ऐसे ग्रादमी को समाज से निकाल दिया जाता हैं। कलकत्ता ग्रौर दिल्ली जैसे बड़े शहरों में यह चीज़ ज्यादा नहीं है,

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

लेकिन गांवों में तो यह एक बड़ी ताकतवर चीज़ है। शहरों में भी अभी तक शादियों वगैरह के मामलों में जाति ही नहीं जाति के अन्दर की और छोटी-छोटी जातियां देखी जाती हैं। दूसरे मुल्कों से आने वाले आदमी को हमारे अखबारों में शादी वाले इश्तिहार देख कर बड़ी हैरानी होती है। उसने और कहीं भी ऐसी बात नहीं देखी होती।

दूसरी बात मैं यह कह रहा था कि भारतीय एकता और राष्ट्रवाद की बात ऊपरी सतह पर ही रह जाती है। मैं यह नहीं कहता कि उसमें कोई सचाई नहीं हैं, या यह कि हम पूरी सचाई के साथ उन पर यकीन नहीं करते। हमारे विश्वास में सचाई है। हां, लेकिन भारतीय एकता और राष्ट्रवाद की हमारी धारणायें, हमारे नजरिये अपने-अपने छोटे समाजों के तंग दायरों तक महदूद रहते हैं। हम सभी राष्ट्रवाद को एक तरीके से नहीं देखते-समझते। जातियों से बने समाज के ढांचे में हम शुरू से पाले गये हैं। इसलिये वह हमारा पीछा नहीं छोड़ता। उससे पीछा छुड़ाना आसान नहीं है।

कुछ लोग कहते हैं कि भाषा के आधार पर राज्य बनाने की वजह से ही यह हालत हुई। नहीं, चीज़ इससे कहीं गहरी है। विदेशों में भारतीय लोगों की अलग-अलग क्लबों की मिसाल मैंने आपको बताई है। वे दूसरी क्लबों के लोगों से शायद ही कभी मिलते-जुलते हों।

यह बड़ी अजीब सी चीज है, और इससे हमारे अन्दर बड़ी कमजोरी आती है। आसाम की इन दर्दनाक घटनाओं का अगर कोई फायदा हुआ है तो एक यही कि हमारे दिमागों में छिपे बैठे इस भूत को उसने उजागर कर दिया है। हम उसकी बदसूरत शक्ल देख सके हैं। हम में से कोई भी फख्र के साथ नहीं कह सकता है कि उसके अन्दर यह बदसूरत चीज़ नहीं छिपी है। और जब भी उस पर कोई चोट होती है, हमारे दिमाग के उस कोने पर, जहां वह छिपा बैठा है, जब भी कोई चोट होती है, हम भड़क उठते हैं।

हमारे दोस्त, श्री हिनिटा ने कल एक बड़ी दिलचस्प सी स्पीच दी। उन्होंने बड़े उत्तेजित होकर एक बड़े मशहूर अमरीकी नेता का नारा बुलन्द किया : "मुझे या आजादी दो या मौत।" समझ में नहीं आई उनकी बात। मौत का सवाल कहां उठा? वह तो इस सिलसिले में कुछ कह रहे थे कि आसामियों को क्या सरकारी भाषा बनाना चाहिये। लेकिन उन्होंने उसे आजादी या मौत के सवाल के बराबर बैठा दिया।

अगर उनका मतलब सोचने की आजादी से था, तो ठीक है, सोचने की आजादी तो होनी ही चाहिये। दुनिया में जालिम से जालिम बादशाह भी सोचने की आजादी को खत्म नहीं कर पाये। वे ज्यादा से ज्यादा इतना ही कर पाये हैं कि लोगों को आम जनता के सामने ख्यालात का इजहार करने से रोक दिया गया है। सोचना तो कोई भी कभी नहीं रोक पाया।

इसलिय इसमें सोचने की आजादी का तो सवाल ही नहीं उठता। मैं माननीय सदस्य की आलोचना या नुक्ताचीनी नहीं करता। मेरा मतलब सिर्फ इतना है कि जब हम इन छोटी छोटी चीजों को इतना तूल देने लगते हैं, तो हमारा दिमागी सन्तुलन बिगड़ जाता है। मैं दूसरे माननीय सदस्यों की भी मिसाल दे सकता हूं कि वे भी किस तरह उत्तेजना में बह जाते हैं। अगर कोई मुझ से कहे कि मैं अपनी भाषा, अपनी जुबान का ही इस्तेमाल करना चाहता हूं, मैं नहीं चाहता कि मेरे ऊपर कोई दूसरी जुबान लादी जाये, तो मैं उसकी बात मानने के लिये तैयार हूं। लेकिन जिस सन्दर्भ में यह बातें कही जायें, वह बहुत महत्वपूर्ण होता है जब लोग ऐसी बातें करते करते उत्तेजित हो जाते हैं और उनमें बर्दाश्त नहीं रहती तथा सब गड़बड़ हो जाता है।

हिनिडा साहब अपनी जुबान में ही बोलें, ठीक है । लेकिन यह तो गलत होगा कि वह दूसरों को भी उनकी अपनी जुबान का इस्तेमाल न करने दें ।

तो आसाम बंगाल के ये वाकयात उन तक ही महदूद नहीं । वे हमारे पूरे राष्ट्र, हमारे पूरे देश की समस्या का एक बड़ा संजीदा पहलू हमें दिखाते हैं । वह एक इतनी बुनियादी चीज़ है कि उस पर पूरे देश की किस्मत का दारोमदार है। हम सभी इसके लिये जिम्मेदार हैं। मैं अपने को बरी नहीं करता इस जिम्मेदारी से । अपनी परम्पराओं और अपनी समाजी विरासत की वजह से हम में से हर एक अपने अपने तंग दायरे में ही महदूद रहता है । मैं समाजी तौर तरीकों की विरासत की बात कर रहा हूं ; हम अपने अपने चौकों में रहने के आदी हो गये हैं । न दूसरे के चौके में जायेंगे, न दूसरे को अपने चौके में आने देंगे । खान-पान और शादियां अपनी ही जाति के लोगों में होती हैं । इसीलिये हम भारतीयों को दूसरे मुल्कों के लोगों के साथ मिलने-जुलने और रहने में सबसे ज्यादा मुश्किल पड़ती है । गैर-मुल्की मामलों के बारे में, अकसर यहां कुछ ऐसे ढंग से सवालात पूछे जाते हैं जैसे कि हम ही सारी दुनिया को चलाते हैं । हम अपनी खामियां नहीं देखते ।

दूसरे-दूसरे मुल्कों से लोग हमारे यहां आते हैं । यहां उनको एक ऐसा समाज मिलता है जिसमें वे आसानी से घुल मिल नहीं पाते । उनको ताज्जुब होता है । दुनिया में शायद और कहीं भी ऐसा समाज नहीं मिलता हमारे समाज में सोच-विचार और दर्शन के मामले में बड़ी उदारता है,और उसी ने हमें इतना ऊंचा उठाया है दुनिया मेंलेकिन दूसरी तरफ हमारी समाजी जिन्दगी इतने तंग दायरे में बंटी हुई है । भारतीय समाज में इन दोनों मुखालिफ चीजों का एक अजीबसा मेल है । यह ठीक है कि हम अब उन दोनों से आगे बढ़ रहे हैं, बढ़ते जा रहे हैं । लेकिन अभी भी हमारी जिन्दगी पर उनका बड़ा असर है : अपने ही दायरे में रहने पर तो हमें इनका पता नहीं चलता, लेकिन जब हम इन सभी छोटे छोटे समाजों को लोकतन्त्र में लाने की कोशिश करते हैं, तो इन छोटे छोटे समाजों में टक्करें शुरू हो जाती हैं ।

साम्प्रदायिकता आखिर है क्या ? आप देख ही चुके हैं हिन्दू साम्प्रदायिकता और मुस्लिम साम्प्रदायिकता का सवाल उठते देख चुके हैं । आप उसे बड़ी आसानी से हिन्दू राष्ट्रवाद या मुस्लिम राष्ट्र वाद कह सकते थे । हिन्दुओं को अपनी साम्प्रदायिकता को हिन्दु राष्ट्रवाद कहने में ज्यादा आसानी थी, क्योंकि वे हजारों साल से इसी देश में बसते रहे हैं । चूंकि मुसलमानों के साथ बात दूसरी थी । इसलिये उनको कुछ कठिनाई पड़ी । लेकिन असल में तो ये दोनों ही साम्प्रदाविक ।

और, हमें इसी बुनियादी मसले का हल निकालना पड़ेगा । हो सकता है कि भाषावार राज्यों के मसले ने भी इस आग को भड़काने में कुछ मदद दी हो । लेकिन यह बुनियादी मसला उससे कहीं गहरा है । भाषा के आधार पर जो राज्य बन चुके हैं, वे तो रहेंगे ही । हम उनको मेट तो नहीं सकते । बार-बार काट-छांट तो नहीं की जा सकती इन मामलों में । इसलिये हमें उनको मानकर चलना पड़ेगा और अपने को उनका आदी बनाना पड़ेगा, इतना आदी कि हम एक-दूसरे के साथ अमन और दोस्ती से रह सकें । जुबान के मसले से ही हर मसले को जोड़ देना एक बेमतलब सी चीज़ है; बिल्कुल बेमतलब ।

डा० सुशीला नायर ने कुछ मुश्किलात की तरफ इशारा किया था । बाकी सारी दुनिया में हर पढ़ा लिखा आदमी तीन या चार जुबानें जानता है । सिर्फ हमारे यहां ही लोग एक भी दूसरी जुबान सीखने की बात कहने पर बिगड़ खड़े होते हैं । अजीब सी चीज़ है । हमें साफ तौर पर समझ लेना चाहिये कि यह मसला कहीं ज्यादा गहरा और गम्भीर है । इसलिये कि कोई भी काम करने की पहली सीढ़ी होती है—उसे समझना ।

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

दूसरी बात यह है कि यह मामला सिर्फ यहीं तक नहीं है कि हम कुछ बुराइयां दूर कर दें और गलत ढंग के काम करने वाले लोगों को शरारती लोगों को सजायें दे दें। सिर्फ इतने से इस समस्या का हल नहीं होगा शरारत करने वालों को, बदअमनी फैलाने वाले लोगों को सजा तो देनी ही पड़ेगी इसमें शक नहीं कि ऐसे लोगों को छोड़ना नहीं है। वे चाहे जिस पार्टी के हों और चाहे जितने बड़े ओहदों पर हों। उनको सजा तो देनी ही चाहिये, मैं मानता हूं। ऐसे आदमियों को अपने अन्दर शरण देकर कोई भी पार्टी फल-फूल नहीं सकती। लेकिन यह भी याद रखना चाहिये कि ऐसे लोग आम जनता में घुल मिल कर, उनका रुख देख कर उनके जैसी बातें बना कर ही ऐसे मौकों पर आगे बढ़ते हैं। अगर ऐसा न हो, तो उनमें और आम चोर-उचक्कों में कोई फर्क ही न रह जाये।

मैं मानता हूं कि वे जनता को उभाड़ते हैं। असल में होता यह है कि दोनों एक-दूसरे पर असर डालते चलते हैं। जनता का दिमाग एकाध स्पीच से नहीं बनता। वह तो पीढ़ी-दर-पीढ़ी बनता चला आता है। जनता का दिमाग एक दिन में नहीं बन जाता—बहुत पहले से, पीढ़ी-दर-पीढ़ी बनता चला आता है। मैं आचार्य कृपालानी की यह बात मानता हूं कि ऐसे मौकों पर जनता को उभाड़ा जाता है। आसाम में ऐसा हुआ भी था। लेकिन उसमें कई महीने लगे थे।

इस साल के शुरू में भी मैं आसाम गया था। वहां यूनीवर्सिटी के सामने विद्यार्थियों ने एक एड्रैस, एक अभिनन्दन पत्र भेंट किया था उस अभिनन्दन पत्र के आधे से ज्यादा हिस्से में भाषा का जिक्र था कि वे इस भाषा को कितना चाहते हैं। उस वक्त भी मैंने महसूस कर लिया था कि वे वैसा क्यों कह रहे हैं। मैंने उनसे इतना ही कहा था कि चीज़ अच्छी है, ठीक है; लेकिन उस सवाल को उठाने का वह वक्त ठीक नहीं, क्योंकि दूसरी बड़ी अहम चीजें हमारे सामने हैं। इससे पता चलता है कि ऐसे जज़बात वहां अर्से से पनप रहे थे। जुबान के मसले को उन्होंने अपना निशान, अपना प्रतीक बना लिया था। भाषा का मसला आसामियों की अपनी जिन्दगी, उनके आसामी होने का और उनके भविष्य का एक निशान बन चुका था, चिह्न बन चुका था। और जब कोई चीज़ निशान या प्रतीक बना ली जाती है तो किसी बहस-मुबाहिसे की गुंजाइश नहीं रह जाती। उसके बारे में वे कोई दलील सुन तक नहीं सकते। आसाम में यह हालत धीरे धीरे पैदा हुई थी। इसने करीब-करीब हर आसामी को अपनी लपेट में, अपने बहाव में ले लिया था। वह सभी गये थे, हां, कुछ ज्यादा, कुछ कम। श्री चालिहा जैसे कुछ बुद्धिमान आदमियों ने भी इसे महसूस किया, लेकिन उन्होंने साथ ही यह भी देखा कि ऐसी कार्यवाही का लाजिमी नतीजा क्या होगा और इसीलिये इस बहाव को रोकने की कोशिश की। उन्होंने सोच-समझ कर दोनों के बीच का एक रास्ता अपनाने की कोशिश की। इसलिये कि श्री चालिहा में काफी बर्दाश्त है और वह दूरंदेश आदमी हैं। उन्होंने लोगों को समझाकर अपनी ओर लाने की कोशिश की साथ ही लोगों को नाराज भी नहीं किया। लेकिन भाषा का मसला तो आसामी जनता के लिये एक निशान बन गया था, उन सभी चीजों के लिये जिनको वे बहुत ज्यादा चाहते थे। और ऐसी हालत में लोगों को गलत काम के लिये उकसाना काफी आसान बन जाता है। आचार्य कृपालानी का इशारा शायद इसी की ओर था।

ऐसी हालत में आपको गलत काम के लिये उकसाने वाले लोगों और आम जनता की राय में फर्क करना चाहिये। अगर आप दोनों में फ़र्क नहीं करेंगे तो ग़लत काम करने वाले लोगों के सिरपर सेहरा बंध जायेगा, वे हीरो बन जायेंगे। आपका काम यही है कि उनके सिर सेहरा न बंधने दें।

कई माननीय सदस्यों ने तरह-तरह के सुझाव रखे हैं कि केन्द्रीय सरकार को और राज्य सरकारों को ऐसी हालत में क्या करना चाहिये था। लेकिन उन माननीय सदस्यों ने शायद यह नहीं सोचा कि वैसे कदम उठाने का क्या असर पड़ेगा लोकतंत्र के काम पर या जो वे हासिल करना

चाहते हैं उस पर। कई कारणों से, पिछले इतिहास की वजह से, आसामी जनता ब्रिटिश हुकूमत के दिनों से ही यह महसूस करती आ रही है कि उसे दबाया जा रहा है, ब्रिटिश शासक और दूसरे लोग उसे कुचल रहे हैं और उसकी तरफ ध्यान नहीं देते। उन्होंने इससे छुटकारा पाने की कोशिश की। लेकिन उन्होंने इसके लिये एक बड़ा गलत तरीका अपनाया। आप देखिये कि १०-१२ साल पहले उन्होंने कितने गलत ढंग की, भोंडी भाषा का प्रयोग किया था। असल में वह उनका एक महदूद सा राष्ट्रवाद ही था, जो उभरने की कोशिश में था। वह राष्ट्रवाद बुरा भी था और अच्छा भी। बुरा इसलिये कि वह एक तंग दायरे में महदूद था, और अच्छा इसलिये कि वह एक नयी उभरती हुई भावना थी। इस तरह उसमें बुराई और अच्छाई दोनों का मेल था, दोनों आपस में गुंथी हुई थीं। कभी कभी दोनों को अलग करना मुश्किल हो जाता है। जो भी हो, यही वह समस्या है जिसके इतने दर्दनाक नतीजे हमारे सामने आये हैं।

मैं आसाम हो आया हूं। अपनी आंखों से देख आया हूं वहां के हालात। और मैंने उसके बारे में काफी ज्यादा पढ़ भी रखा है। मैं माननीय सदस्यों के मुकाबले इस मामले में काफी ज्यादा जानकारी रखता हूं। फिर भी मैं उनकी तरह इतने साफ ढंग से, निश्चित रूप से यह नहीं कह सकता कि इन दर्दनाक घटनाओं की जिम्मेदारी किस पर है। घटनाओं के बारे में तो सभी जानते हैं। कितनी अफसोसनाक बात है कि एक राज्य से कुछ लोगों को भागने पर मजबूर किया जाये। कुछ डण्डे के जोर से भगाये गये हैं, लेकिन ज्यादातर लोग डरके मारे घबरा कर भागे हैं।

मैं जब अखबारों की आलोचना करता हूं तो इसलिये नहीं कि उनमें यह या वह बात गलत छपी थी। ऐसे हालात में अपने को संभालना मुश्किल हो जाता है। गलत खबर देना, इतना बुरा नहीं है, बुरा यह है कि अखबारों ने लोगों को और अधिक भयभीत बनाने में मदद दी। ऐसे हालात में अगर अखबार चाहें, तो लोगों को भड़कने से काफी हद तक रोक सकते हैं। और अगर अखबार ही लोगों में भय फैलाने लगें, तो सरकार उसे नहीं रोक सकती।

माननीय सदस्यों ने केन्द्रीय सरकार और आसाम सरकार को इन दर्दनाक, अफसोसनाक घटनाओं के लिये कसूरवार ठहराया है। मेरे सहयोगी, गृह-कार्य मंत्री ने केन्द्रीय सरकार ने जो भी किया उस सारे की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली है। मैं भी उतना ही जिम्मेदार हूं। हम सभी जिम्मेदार हैं। आप देखिये, और अगर हमने अनजाने में या जानबूझकर कोई गलती की हो, तो यह सभा या देश हमें उसके लिये सजा दे सकता है। हमने इस पर बार-बार सोचा-समझा है। हम बार बार इसी नतीजे पर पहुंचे हैं कि हमने उसके बारे में कोई लापरवाही नहीं की। गृह-कार्य मंत्री आसाम की इन घटनाओं से बहुत ज्यादा दुखी और परेशान रहे हैं; मैं जानता हूं। इसलिये कि वह एक बहुत बुरी चीज थी। एक ऐसी चीज जो हमारी कमजोरी, हमारी नाकामयाबी और बदअमनी, बदइंतजामी और दिमाग की तंगी की निशानी थी। वह निशानी थी इस बात की कि हमारे देश में कुछ ऐसी ताकतें काम कर रही हैं जो देश को टुकड़े-टुकड़े कर देना चाहती हैं। हमें यही महसूस हुआ।

मैं ठीक से समझ नहीं पाया हूं कि केन्द्रीय सरकार उस हालत में क्या कर सकती थी। हमारी बदकिस्मती ही है कि देश के कई हिस्सों में ऐसी घटनायें होती रहती हैं, हर रोज कुछ न कुछ हो ही जाता है। यहां तक कि हम ऐसी खबरें पढ़ने के कुछ कुछ आदी हो गये हैं। आसाम की खबरों से हमें जून में भी परेशानी थी, लेकिन हमने यह नहीं समझा था कि बात इतनी बढ़ जायगी। मुझे तो जुलाई के शुरू महीने में वहां के हालात जानकर सबसे ज्यादा सदमा लगा। उससे पहले भी हम आसाम की खबरें लगातार मंगाते रहे थे। हम उन्हें लिखते थे, टेलीफोन पर पूछते थे हर तरह से हालात जानने की लगातार कोशिश करते रहे थे। आसाम के गवर्नर ने २८ जून को हमसे कहा था

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

कि दो-तीन दिन में सारी गड़बड़ी ठंडी पड़ जायेगी। उनका यही ख्याल था, और वह एक ऐसे आदमी हैं जिनकी राय की हमें कद्र करनी ही चाहिये। यह उनकी आलोचना नहीं है, क्योंकि राय बनाने के मामले में ग़लती तो सभी से हो सकती है। लेकिन उसके बाद ही, जुलाई के शुरू में घटनाओं का तांता लग गया।

हमने फौरन, उसी दम, ४ जुलाई से पहले ही फौज को वहां जाने के लिये कह दिया। गौहाटी में ४ जुलाई को हमारी फ़ौज पहुंच गई थी, और ६ जुलाई को शिलांग में। बाद में फौज बढ़ती गई, फैलती गई। केन्द्रीय सरकार इससे ज्यादा क्या कर सकती थी?

किसी ने पूछा था कि हमने फौज को चारों तरफ फैलाकर सारे दंगे को खत्म क्यों नहीं करा दिया। हमने फौज को आसाम की सरकार के मातहत क्यों रखा? दूसरे लफ्जों में यह कि हमने सारी हुकूमत वहां फौज के हाथों नहीं सौंप दी, वहां मार्शल ला लागू क्यों नहीं कर दिया। यह बात हमारे दिमाग में नहीं आई, इसलिये कि हम मार्शल लॉ जारी करने के आदी नहीं हैं। लेकिन उससे भी कोई ज्यादा फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि फौज अपने एक खास ढंग से चलती है। वह बड़ी-बड़ी टुकड़ियों में इधर उधर बढ़ती है। पुलिस वालों की तरह नहीं फैलती—एक एक पुलिस वाले की तरह से।

†**श्रीमती रेणु चक्रवर्ती :** क्या इसका यह मतलब है कि हमारी फौज वहां ४ जुलाई को पहुंचने के बाद अगले आठ दिनों में कुछ भी नहीं कर सकी?

†**श्री जवाहरलाल नेहरू :** फौज जहां थी, वहां उसने काम किया। लेकिन घटनायें तो एक ही वक्त में सैंकड़ों जगहों पर हो रही थीं।...

†**श्री ही० ना० मुकर्जी** (कलकत्ता-मध्य) : महिलाओं के शिष्टमंडल ने हमें बताया है कि नौगांव के पास एक स्थान पर दो तीन घंटे में एक सिलसिले से सभी मकानों को मटियामेट कर दिया गया था। और सेना कुछ भी नहीं कर सकी?

†**श्री जवाहरलाल नेहरू :** आप ठीक कह रहे हैं। मैंने नौगांव का वह इलाका देखा है। एक बहुत बड़ा पट्टा है, जिसमें यह बर्बादी हुई थी। मैं अभी ठीक ठीक नहीं बता सकता कि वहां उस वक्त हमारी फौज थी या नहीं। इतना जरूर जानता हूं कि ४ जुलाई को वह गौहाटी पहुंच गई थी, और ६ जुलाई को शिलांग। यह बर्बादी ६ जुलाई को हुई थी। फौज शायद उसके बाद नौगांव पहुंची होगी। ये घटनायें ५ से ८ तारीख तक ३-४ दिन में हुई थीं। इससे जल्द वहां फौज का पहुंचना मुश्किल था, इसलिये कि हर तरफ एक ही वक्त में घटनायें हो रही थीं।

मैंने एक पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट से पूछा था कि वह उस वक्त क्या कर रहे थे। मैंने पूछा इस लिये था कि एक बंगाली महाशय ने मुझ से शिकायत की थी कि उन्होंने अपने ऊपर हमले का अंदेशा देखकर पुलिस थाने को टेलीफोन किया था, लेकिन वहां से उनको कोई मदद नहीं दी गई। इस पर पुलिस सुपरिन्टेन्डेंट ने जवाब दिया था कि पुलिस थाने में उस वक्त बिल्कुल हंगामा मचा हुआ था, सैंकड़ों फोन हर तरफ से आ रहे थे और जब कि थाने में कुल एक दर्जन या बीस सिपाही ही मौजूद थे। उस हंगामे में क्या किया जा सकता था। मैं पुलिस की तरफ से सफाई नहीं दे रहा हूं। एक बात बता रहा हूं। लेकिन इससे पता चलता है कि पुलिस की ताकत बड़ी नाकाफी थी। इससे पता

†मूल अंग्रेजी में

चलता है कि प्रशासन बिल्कुल पंगु हो गया था। मैं आपको बता रहा हूं जो मैंने वहां खुद देखा। और इतना सब कुछ चार पांच दिन में हो गया—५ जुलाई से १० जुलाई तक। शायद फौज इससे कुछ ज्यादा फुर्ती के साथ भी काम कर सकती थी। शायद कर सकती हो, मैं इसका फैसला नहीं कर सकता। वास्तव में रेलवे लाइन के दोनों ओर पांच पांच मील तक उत्पात-ग्रस्त क्षेत्र अध्यादेश लागू करना पड़ा था, और उसे फौज को सौंप दिया गया था। उसमें सभी बड़े बड़े शहर आ गये थे।

†**श्रीमती रेणु चक्रवर्ती :** सब कुछ हो चुकने के बाद।

†**श्री जवाहरलाल नेहरू :** जी, नहीं शायद ६ या ७ या ८ जुलाई को उन्हीं दिनों।

†**श्रीमती रेणु चक्रवर्ती :** इसका मतलब है कि हमारी सेना आसाम में गई, और गौहाटी, नौगांव, जोरहाट, वगैरह शहरों के लिये इतनी अच्छी अच्छी पक्की सड़कें होते हुए भी, वह कई दिनों तक वहां पहुंच नहीं पाई।

†**श्री जवाहरलाल नेहरू :** फौज के काम करने का तरीका यह होता है कि वह कुछ अपने केन्द्र बना लेती है, वहां काफी तादाद में फौजी टुकड़ियां भेज दी जाती हैं, फिर वहां से फौज की बड़ी टुकड़ियाँ चारों तरफ़ फैलती हैं। फौज हर जगह अपनी बड़ी टुकड़ियां भेजती है, जिससे कम तादाद होने पर वह कहीं घिर न जाये। इस तरह दंगों पर काबू करने का आम तौर से उसे कोई ज्यादा तजुर्बा नहीं होता। फिर भी मैं ठीक ठीक नहीं बता सकता कि फौज ने वहां क्या क्या किया।

हमें यह याद रखना चाहिये कि इस मामले में शरारत करने वालों ने बहुत कुछ किया है, उनको इसमें आसानी इसलिये रही कि जनता काफी उभड़ी हुईथी, जिसे उन्होंने ही उभाड़ा था, जैसा कि आचार्य कृपालानी ने कहा है।

†**आचार्य कृपालानी** (सीतामढ़ी) : आप की दलीलों से तो ऐसा लगता है कि आसाम की घटनायें जैसे भूकम्प या बाढ़ की तरह हो गई थीं, और अगर ऐसी विपत्ति आगे फिर आई, तो भी हम कुछ नहीं कर सकेंगे।

†**श्री जवाहरलाल नेहरू :** मेरा यह मतलब नहीं। मैं शायद अपनी बात समझा नहीं पाया।

मैंने तो आपको बताया है कि घटनायें किस सिलसिले से हुई थीं। मैं सभा से यही अर्ज कर रहा हूं कि ऐसी हालत में क्या किया जा सकता है। यही समस्या है हमारे सामने।

ऐसी परिस्थिति में आपको शरारतें करने वालों से भी निबटना-सुलझना पड़ता है और जनता के उभरे हुए जोश से भी। अगर आप दोनों को एक लाठी से हांकने की कोशिश करेंगे तो नाकमयाबी ही हाथ लगेगी। मार्शल लॉ लगा देने से हालत एकदम बदतर हो जाती है। इसमें यही मुश्किल है।

दूसरे भी कई लोग पिछले कुछ हफ्तों में आसाम गये हैं। उन्होंने वहां की जनता से बात की है, वहां की हालत देखी है। आसाम से लौटने वाले लोग एक बिल्कुल ही बदले हुए ढंग से बात करते हैं। उनका ढंग उन लोगों से एकदम फ़र्क होता है जो खुद आसाम नहीं गये हैं। यह चीज बड़ी अहमियत रखती है। इसलिये कि उन लोगों ने आसाम की जनता की भावनाओं को कुछ ज्यादा समझा और महसूस किया है। आसाम से लौटने वाले लोग, वे चाहें जिस पार्टी के हों, किसी भी बड़ी न्यायिक जांच कराने की बात की ताईद नहीं करते। आसाम की परिस्थिति खुद देखकर जो भी लोग लौटे

---

†मूल अंग्रेजी में

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

हैं. वे जानते हैं कि न्यायिक जांच कराने से हालत में सुधार होने की बजाय बिगाड़ होगा। तथ्य की बात यही है।

यह एक ऐसा मसला है जिस पर एक पार्टी के सभी लोग एकमत, एकराय नहीं हैं। प्रजा-सोशिलस्ट पार्टी के विचार मुझे मालूम नहीं हैं। लेकिन मैं चार पांच दिन हुए जब पढ़ रहा था कि कम्युनिस्ट पार्टी की आसाम-शाखा ने आसामी भाषा को सरकारी भाषा बनाने की मांग का समर्थन किया है। लेकिन क्या कम्युनिस्ट पार्टी की बंगाल-शाखा भी उसका समर्थन करेगी ?

†**श्रीमती रेणु चक्रवर्ती :** कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति ने अब यह प्रस्ताव पास किया है कि आसामी भाषा को मुख्य सरकारी भाषा माना जायेगा।

†**श्री जवाहरलाल नेहरू :** लेकिन मैंने जो पढ़ा है उसमें जरा फर्क है। आसाम-शाखा ने उसे सरकारी भाषा कहा था, "मुख्य सरकारी भाषा" नहीं।

†**श्री ही० ना० मुकर्जी :** वह पहले का प्रस्ताव था। अब इस अनुभव के बाद वहां यह दूसरा प्रस्ताव पास किया गया है।

†**श्री जवाहरलाल नेहरू :** जो भी हो। मेरे पास अभी यहां उसकी कटिंग नहीं है। फिर भी मेरा ख्याल है कि कम्युनिस्ट पार्टी की आसाम-शाखा ने वह प्रस्ताव २७, या २८, या शायद २९ अगस्त को पास किया है, अभी हाल में।

†**श्री ही० ना० मुकर्जी :** आसाम-शाखा के प्रस्ताव का सवाल ही नहीं। ब्रह्मपुत्र घाटी के बंगालियों ने भी आसामी को सरकारी भाषा बनाने का समर्थन किया था। दंगों की वजह भाषा सम्बन्धी कोई प्रस्ताव नहीं, बल्कि कुछ और ही है।

†**श्री जवाहरलाल नेहरू :** इसका दंगों से कोई ताल्लुक नहीं। मैं आपको सिर्फ यह बताने की कोशिश कर रहा था कि इस मसले के बारे में एक पार्टी के सभी लोग भी एकराय नहीं हैं। पार्टी के सदस्य एक तरफ तो पार्टी के अनुशासन से बंधे हैं, और स्थानीय जनता का आन्दोलन उनको दूसरी ओर खींचता है। जाहिर है कि हर जन-पार्टी को ऐसी चीजों का सामना करना पड़ता है।

साफ है कि मार्शल लॉ से कुछ हासिल नहीं होता। वह तो वहीं ठीक रहता है, जहां हमेशा गड़बड़ी बनी रहती हो। आसाम में आधे अगस्त के बाद कोई वैसी गड़बड़ी या दंगों की हालत नहीं रही। छुट-पुट घटनायें जरूर हुई हैं। यह भी सही है कि लोगों के दिल में अभी तक डर समाया हुआ है। लेकिन वहां फौज को चारों तरफ फैला दिया गया है और अब एक बड़े पैमाने पर कोई गड़बड़ी नहीं हो सकती। सरकारी काम भी अब वहां मुस्तैदी से चलने लगा है। मुख्य मंत्री, श्री चालिहा तो बीमार पड़े थे, लेकिन मैंने देखा है कि दूसरे मंत्री काफी मेहनत से काम कर रहे थे। हमने मंत्रियों के लिये यहां से विशेष अधिकारी, काबिल अधिकारी भी जुटा दिये हैं, अभी भी जुटाये जा रहे हैं। हम इसी नतीजे पर पहुंचे हैं कि हालत पर काबू पाने का सब से अच्छा तरीका यही है कि आसाम सरकार के जरिये ही सारा काम कराया जाये।

यह भी मुमकिन था कि आसाम सरकार को उठा कर एक तरफ रख दिया जाता। लेकिन फिर उसकी जगह या तो राष्ट्रपति का शासन होता या कुछ और इन्तजाम किया जाता। हम ने

---

†मूल अंग्रेजी में

महसूस किया कि अगर आसाम सरकार को हटा दिया जायेगा, तो हमें आम जनता का थोड़ा भी समर्थन नहीं मिलेगा। आसाम का हर आदमी, हर गुट, और वहां की हर पार्टी ऐसे किसी भी इन्तज़ाम के खिलाफ़ थी। फौज के बल पर हम वहां जम तो सकते थे, अपनी हुकूमत उन पर लाद सकते थे, लेकिन, उससे हासिल क्या होता? आसाम सरकार हमारी हर बात मान ही रही थी। वह हम से सलाह करती थी, और उसी सलाह पर चलती थी। गवर्नर वहां हमारी नुमाइंदगी करने के लिये मौजूद थे ही। गवर्नर वहां आसाम सरकार के साथ नजदीकी सम्पर्क रखे हुए थे। इसीलिये हमने महसूस किया कि कोई और तरह का नया इंतजाम करने से हमारा मकसद पूरा नहीं होगा। इसलिये हमने आसाम सरकार के जरिये ही अपना काम कराया। अगर न करा पाते तो फिर राष्ट्रपति का शासन वहां करने की बात सोची जाती।

†**श्री जयपाल सिंह** (रांची—पश्चिम—रक्षित—अनुसूचित आदिम जातियां) : मैं एक स्पष्टीकरण चाहता हूं। यदि किसी क्षेत्र में प्रशासन ठप्प हो जाये, लेकिन फिर भी उस क्षेत्र की जनता केन्द्र के हस्तक्षेप के विरुद्ध हो, तो संवैधानिक रूप से क्या स्थिति होगी?

†**श्री जवाहरलाल नेहरू** : यह कई और बातों पर निर्भर होता है। मिसाल के तौर पर अगर उन दिनों मैं आसाम में होता और मैं ने ६, ७ या ८ जुलाई की घटनायें देखी होतीं, तो मैं केन्द्रीय सरकार से जरूर कहता कि आप आइये। वास्तव में केन्द्रीय सरकार के हस्तक्षेप का मतलब यही था कि केन्द्र वहां बड़ी तादाद में एक बड़े पैमाने पर फौज भेजे और फौज तो वहां भेजी ही गई थी। बस सिर्फ इतना बाकी रह गया था कि मंत्रिमंडल को हटा दिया जाता, और उसके बदले गवर्नर की मदद के लिये दो-चार बड़े-बड़े अफसर भेज दिये जाते आसाम में। असली चीज़ तो फौज का नियंत्रण है, जो वहां हो ही गया था। रेलवे लाइन के दोनों ओर तीन-चार मील तक का इलाका पूरी तरह से फौज के हाथ में था ही। और उस इलाके में करीब-करीब सभी बड़े शहर आ गये थे।

इसलिये मुझे अब यही कहना है कि हमें इस पूरी समस्या को एक ऐसे नजरिये से देखना चाहिये जिससे कि बुनियादी मसलों को हल किया जा सके। अगर इसके बारे में हमारा नजरिया घावों पर सिर्फ ऊपर से मरहम लगाने का रहेगा, तो कुछ अर्से बाद वे जख्म फिर रिसने लगेंगे। हमने यही नजरिया अपनाने की कोशिश की है।

हमने न्यायिक जांच और शरारतियों को सजा देने की बात—इन दोनों को अलग-अलग रखा है। दोनों का मेल नहीं बैठता। न्यायिक जांच में तो बुनियादी चीज़ों की, जड़ की जांच की जाती है। उसमें काफी वक्त लगता है। वह एक अलग चीज है। अगर आप दोनों को गड़बड़ा देंगे, तो जिन लोगों को सजायें मिलनी हैं उनका मसला भी बुनियादी मसलों में घुलमिल जायेगा। तब उनको सजा नहीं दी जा सकेगी। उसमें बहुत देर लगेगी। इसलिये दोनों को एक में गड़बड़ाना नहीं चाहिये। इससे दोनों ही कामों में अड़चन पड़ेगी। बुनियादी कारणों की जांच ठीक से नहीं हो पायेगी और शरारतें करने वालों को सजायें भी नहीं मिल पायेंगी। इसीलिये हम पहला काम पहले पूरा करेंगे। पहले हम शरारत करने वालों को सजायें देंगे और इसके लिये जगह-जगह पर छोटी-छोटी जांचें करायेंगे। इन जांचों का काम भले और काबिल लोगों को, उन्हीं इलाकों के लोगों को सौंपा जायेगा। अभी भी ४,००० से ज्यादा लोग गिरफ्तार हैं। हो सकता है कि उनके कुछ मुखिया लोग अभी इन के साथ गिरफ्तार न हो पाये हों। आचार्य कृपालानी जैसे कुछ पुराने सहयोगियों को याद होगा कि पिछले जमाने में हिन्दू-मुस्लिम दंगे होते थे और हमारा तजुर्बा यह था

†मूल अंग्रेजी में

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

कि दंगा खत्म होने के बाद जब अमन कमेटी बनती थी, तो दोनों तरफ के बड़े से बड़े बदमाश उन में शामिल हो जाते थे। दंगों को भड़काने वाले मुखिया लोग ही उन कमेटियों में शामिल हो जाते थे। आसाम में भी वही कहानी दोहराई जा सकती है। क़तई मुमकिन है।

हमें इसीलिये इन दोनों को अलग रखना है। दोनों को एक नहीं होने देना है। दोनों को एक में गड़बड़ा देने से कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। दोनों में से एक भी मंशा पूरा नहीं होगा।

अजित प्रसाद जैन के साथ जाने वाले शिष्टमंडल ने, बल्कि आसाम के हालात से वाक़िफ़ सभी लोगों ने, जोर देकर कहा है कि आसाम और बंगाल, दोनों राज्यों की जनता इस वक्त ठंडे दिमाग़ से सोचने के लायक नहीं है। दोनों जगह की जनता भड़की हुई है, गुस्से में है। ऐसी हालत में अपनी बात सुनाना और काबू करना सब से मुश्किल होता है। इसीलिये मैं ने अखबारों से अपील की है कि वे घावों को भरने की कोशिश में हाथ बटायें। मेरी तो हर आदमी से यही अपील है। मैं यह नहीं कहता कि सच्ची खबरों पर पर्दा डाला जाये, बल्कि उनको ऐसे ढंग से पेश किया जाये जिस से लोगों का गुस्सा और न बढ़े, उनके दिमाग़ ठंडे होना शुरू हों। अपराधियों को सजा दी जाये, जरूर दी जाये। लेकिन इस ढंग से नहीं कि जैसे बदला लिया जा रहा हो। हमारी बुनियादी नीति यही है कि लोगों में भाईचारा और आपसदारी पैदा करने की कोशिश की जाये। यह इसलिये जरूरी है कि यहां सवाल आम जनता का है। जनता के लोगों को एक दूसरे के साथ ही रहना है, चाहे अमन के साथ रहें या लड़ते-झगड़ते हुए। हमारा यही नजरिया है। इसका यह मतलब कतई नहीं कि शरारत करने वालों के साथ नरमी बरती जाये।

†**श्री ही० ना० मुकर्जी :** कल माननीय प्रधान मंत्री ने प्रादेशिक आधार पर सक्षम उच्च-स्तरीय न्यायिक जांचों की बात मान ली थी। क्या आज वह उससे पीछे हट रहे हैं ?

†**श्री जवाहरलाल नेहरू :** बिलकुल नहीं। मैं चाहता हूं कि स्थानीय आधार पर जांचें हों। अनुमान तो यही है कि वे न्यायिक जांचें होंगी, लेकिन गारंटी भी नहीं की जा सकती कि हर जगह न्यायिक ही होंगी। न्यायिक का यह मतलब तो नहीं कि देश भर की हाई कोर्ट्स के जज बटोरकर इसी काम पर लगा दिये जायें, डिस्ट्रिक्ट जज भी न्यायिक जांच कर सकते हैं। कल मैंने यही कहा था और मैं उसे दोहराने को तैयार हूं।

आसाम और पश्चिमी बंगाल के मौजूदा वातावरण को देखते हुए, अभी बड़े पैमाने पर एक न्यायिक जांच कराने के लिये उपयुक्त समय नहीं है। लोगों में तनाव बहुत ज्यादा है और ऐसी जांच से आग और भी भड़क सकती है। बुनियादी चीज़ यह है कि शरणार्थियों को वापिस भेजने लायक माहौल तैयार किया जाये। एक बड़ी न्यायिक जांच से इस में अड़चन पैदा हो जायेगी।

इसलिये मौजूदा वातावरण में यही नीति सब से अच्छी रहेगी। मैं ने और मेरे सहयोगी गृह-कार्य मंत्री ने यही नीति सभा के सामने रखी है। सभा से इसीलिये मेरा अनुरोध है कि वह इसी नीति को जारी रखने की मंजूरी दे।

---

†मूल अंग्रेजी में

श्री अतुल्य घोष ने कलकत्ता में स्वतंत्रता दिवस न मनाया जाने या कम उत्साह से मनाये जाने का जिक्र किया था। उसके बारे में मेरा ख्याल यह है कि स्वतंत्रता दिवस के मौकें पर हर साल राजभवन में जो एक बड़ी पार्टी दी जाती है, उसे करना या न करना तो गवर्नर के सोचने की बात है यदि गवर्नर समझें कि इस से लोगों के ज्यादा भड़कने की गुंजाइश है, या यह कि पूरे माहौल को देखते हुए वह अच्छी नहीं लगती, तो उसे टाला जा सकता है। लेकिन स्वतंत्रता दिवस के मौके पर काले झंडे फहराना या राष्ट्रीय झंडों को घरों पर से जबरन उतारना बड़ी ग़लत बात है। हमारे सभी सिदस्यों को इस पर विचार करना चाहिये।

इसे शर्मनाक मत कहिये, क्योंकि वहां के लोगों ने गुस्से में आकर वैसा किया था। याद रखने की चीज यह है ऐसी चीजों को बढ़ावा नहीं दिया जाना चाहिये। हरकत करने वाले का इस में दोष नहीं, क्योंकि वह गुस्से में थे। लेकिन यह एक ऐसी चीज़ है जो सारे देश में फैल सकती है और उस से देश का बड़ा नुकसान होगा।

†**अध्यक्ष महोदय**: अब मैं संशोधनों को मतदान के लिये रखूंगा।

†**आचार्य कृपालानी**: प्रधान मंत्री ने कहा है कि जांच होगी। तो फिर मेरे संशोधन को स्वीकार करने में क्या आपत्ति है ? हम ने उस में कोई समय नहीं रखा है।

†**श्री जवाहरलाल नेहरू**: मैं श्री अतुल्य घोष के संशोधन की भाषा और उस में प्रयुक्त शब्दों को ठीक समझता हूं और मैं उसे स्वीकार करता हूं।

†**अध्यक्ष महोदय**: क्या माननीय सदस्य अपना संशोधन वापस लेते हैं ?

†**आचार्य कृपालानी**: जी नहीं।

†**अध्यक्ष महोदय**: मैं आचार्य कृपलानी के संशोधन संख्या ७ को मतदान के लिये रखता हूं।

अध्यक्ष महोदय द्वारा संशोधन संख्या ७ मतदान के लिये रखा गया। पक्ष में ४८ और विपक्ष में १६८।

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

†**अध्यक्ष महोदय**: मैं अब श्री अतुल्य घोष का संशोधन प्रस्तुत करता हूं। प्रश्न यह है:

कि मूल प्रस्ताव के स्थान पर निम्न रख दिया जाये अर्थात् :—

"यह सभा आसाम की स्थिति तथा उस के बारे में संसदीय शिष्टमंडल के प्रतिवेदन पर, जिसे ३० अगस्त १९६० को सभा में उपस्थापित किया गया था, विचार करने के पश्चात् सिफारिश करती है कि आसाम में जुलाई मास में किन परिस्थितियों के फलस्वरूप उपद्रव हुए, इस की जांच करने और भविष्य में ऐसे उपद्रवों की पुनरावृत्ति को रोकने के लिये आवश्यक कार्यवाही के बारे में सुझाव देने के लिये सरकार को उचित समय पर एक न्यायिक जांच की व्यवस्था करनी चाहिये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

†**अध्यक्ष महोदय**: अन्य संशोधन अवरुद्ध हो जाते हैं।

---

†मूल अंग्रेजी में